International Journal of Leading Research Publication (IJLRP)

E-ISSN: 2582-8010 ● Website: www.ijlrp.com ● Email: editor@ijlrp.com

संस्कृत साहित्य में रस–योजना

प्रस्तोत्री

बिनता दास[1]

शोधार्थी

सिंघानिया विश्वविद्यालय, पचेरी बड़ी, झुंझुनू, राजस्थान

शोध पर्यवेक्षक

डॉ. सुमित कुमार शर्मा[2]

सहायक प्रोफेसर

सिंघानिया विश्वविद्यालय, बड़ी पचेरी

सार:

रस काव्य का प्रधान तत्त्व है । आचार्य भरत रस सूत्र के प्रवर्त्तक रहे हैं । भरतमुनि ने रस को काव्य की आत्मा कहा है । रस के बिना किसी अर्थ का प्रवर्त्तन काव्य में नहीं हो सकता। सहृदयों के हृदय में आनन्द की अनुभूति को उद्भावित करना ही काव्य का मुख्य लक्ष्य होता है । इस आनन्दमय अनुभूति को रस कहा जाता है । पंडितराज जगन्नाथ ने अपने प्रसिद्ध काव्य–शास्त्रीय ग्रंथ का नाम ही 'रसगंगाधर' रखा है । उन्होंने काव्य का लक्षण कहा – 'रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्। यहाँ पर पण्डितराज का रमणीयार्थ से अभिप्राय है – रसयुक्त अर्थ । तैतिरीय उपनिषद् में परब्रह्म को रस कहा गया है क्योंकि जीव उसको प्राप्त कर आनन्द का अनुभव करता है।

व्युत्पत्ति :–

व्याकरण के अनुसार 'रस' शब्द की व्युत्पत्ति चार प्रकार से की जाती है :–

1. 'रस्यते आस्वाद्यते इति रसः' अर्थात् जिस पदार्थ का आस्वादन किया जाता है, वही रस है। यथा – सोम, गन्ध, मधु आदि ।
2. 'रस्यते अनेन इति रसः' अर्थात् जिन पदार्थों के द्वारा आस्वादन किया जाता है, उनको रस कहते हैं । यथा – शब्द, राग, वीर्य आदि ।
3. 'रसति रसवति इति रसः' अर्थात् जो व्याप्त हो जाए या व्याप्त कर ले, उसे रस कहते हैं । यथा पारद, जल आदि ।
4. 'रसनं रसः आस्वादः' अर्थात् जो आस्वाद है, उसको रस कहते हैं शृंगार आदि रस आस्वादरूप हैं ।

इन व्युत्पत्तियों में से प्रथम तथा चतुर्थ व्युत्पत्ति साहित्यिक रसों के लिए प्रयुक्त हो सकती हैं, क्योंकि साहित्यिक रसों का आस्वादन किया जाता है और आनन्दस्वरूप होते हैं ।

रस का स्वरूपः–

संस्कृत साहित्य में रस शब्द के प्रवर्त्तक आचार्य भरतमुनि माने गए हैं । उनके नाट्य शास् के छठे अध्याय में रस सम्बन्धी प्रश्नों के उत्तर दिए गये हैं । अभिनवगुप्त ने 'अभिन्व–भारती' में कहा है कि रस काव्य के अर्थ की भावना कराते हैं अर्थात् काव्यार्थ ही रस है । आचार्य अभिनवगुप्त ने रस को लौकिक और अलौकिक दो प्रकार का माना है ।

1. **लौकिक रस :–**

जो रस काव्य, नाटक से उत्पन्न होता है, वह लौकिक रस कहलाता है ।

2. **अलौकिक रस :–**

जो रस मन्त्रों से उत्पन्न होता है, वह अलौकिक रस कहलाता है।

विश्ववाङ्मय में आदिकवि महर्षि वाल्मीकि के मुख से निकले हुए एक वाक्य जो कि करूणा से ओतप्रोत था । उसमें करूण रस की प्रतीति स्पष्ट रूप से होती है –

''मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।

यत्क्रो०चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।''

अर्थात् हे व्याध् तू अनन्त वर्षों तक प्रतिष्ठा को प्राप्त मत कर, क्योंकि तूने प्रेम–क्रीड़ा में लगे हुए सारसों के जोड़े में से एक को मार डाला है।

आचार्य विश्वनाथ ने जो रस को काव्य की आत्मा स्वीकार किया है । 'वाक्यं रसात्मकं काव्यं' अर्थात् रस से युक्त वाक्य काव्य कहलाता है । रस अखण्ड, अद्वितीय, स्वयं प्रकाशरूप आनन्दमय और चिन्मयस्वरूप होता है । इसके साक्षात्कार के साथ अन्य विषय का स्पर्श नहीं होता । रसास्वाद के समय अन्य विषय का ज्ञान पास फटक भी नहीं सकता। इसलिए यह ब्रह्मास्वाद के समान है। आचार्य विश्वनाथ ने रस का स्वरूप इस प्रकार बताया है–

'विभावेनानुभावेन व्यक्तः स०चारिणा तथा ।
रसतामेति रत्यादिः स्थायीभावः सचेतसाम् ।

अर्थात् सहृदय पुरूषों के हृदय में स्थित वासनारूप इत्यादि स्थायी भाव ही विभाव, अनुभाव और स०चारीभाव अभिव्यक्त होकर रस के स्वरूप को प्राप्त होते हैं ।

रस की निष्पत्ति :–

आचार्य भरत का 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगात् रस निष्पत्तिः अर्थात् विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है, यह कहकर रस–विवेचन का सूत्रपात किया। उत्तरवर्ती सभी आचार्यों के रस–विवेचन इसी सूत्र के इर्द–गिर्द घूमते हुए दिखाई देते हैं और सभी ने भरत के 'न हि रसादृतेकश्चिदर्थः प्रवर्तते' सिद्धान्त को इसी रूप में स्वीकार किया। सम्पूर्ण रस प्रप०च इसी सूत्र के इर्द–गिर्द घूमता है । यह सूत्र देखने में साधारण तथा लघुकाय दिखाई देता है लेकिन इसकी व्याख्या गहनतम तथा सारगर्भित है । **विभाव :–**

भरतमुनि विभाव को इस प्रकार परिभाषित करते हैं –

'विभाव्यतेऽनेन वागङ्गसत्त्वाभिनय इति विभावः' अर्थात् जिसके द्वारा कायिक, वाचिक एवं सात्त्विक अभिनयों का ज्ञान होता है, उसे विभाव कहते हैं। कविराज विश्वनाथ ने इसे दो प्रकार का माना है–

1. आलम्बन विभाव 2. उद्दीपन विभाव।

1. आलम्बन विभाव :–

नायक, नायिका आदि पात्र आलम्बन विभाव कहलाते हैं क्योंकि उनके आलम्बन से ही रस निष्पत्ति होती है । 'आलम्बनं नायकादिस्तमालम्ब्य रसोद्गमात्'। यथा– अभिज्ञानशाकुन्तलं में शृंगार प्रसंग में शकुन्तला और दुष्यन्त आलम्बन विभाव हैं ।

2. उद्दीपन विभाव :–

रस के रत्यादि स्थायी भाव को उद्दीपन करने वाले उद्यान, आकाश, चन्द्रमा आदि आलम्बन विभाव की नेत्र–विक्षेप आदि चेष्टाएं उद्दीपन विभाव कहलाते हैं।[1] यथा– एकान्त स्थान नायक–नायिका के भाव को उद्दीप्त करने के कारण उद्दीपन विभाव हैं ।

विभाव :–

भरतमुनि विभाव को इस प्रकार परिभाषित करते हैं –

'विभाव्यतेऽनेन वागङ्गसत्त्वाभिनय इति विभावः' अर्थात् जिसके द्वारा कायिक, वाचिक एवं सात्त्विक अभिनयों का ज्ञान होता है, उसे विभाव कहते हैं। कविराज विश्वनाथ ने इसे दो प्रकार का माना है–

1. आलम्बन विभाव 2. उद्दीपन विभाव।

1. आलम्बन विभाव :–

नायक, नायिका आदि पात्र आलम्बन विभाव कहलाते हैं क्योंकि उनके आलम्बन से ही रस निष्पत्ति होती है । 'आलम्बनं नायकादिस्तमालम्ब्य रसोद्गमात्'। यथा– अभिज्ञानशाकुन्तलं में शृंगार प्रसंग में शकुन्तला और दुष्यन्त आलम्बन विभाव हैं ।

[1] वही, 3.13

2. उद्दीपन विभाव :–

रस के रत्यादि स्थायी भाव को उद्दीपन करने वाले उद्यान, आकाश, चन्द्रमा आदि आलम्बन विभाव की नेत्र–विक्षेप आदि चेष्टाएं उद्दीपन विभाव कहलाते हैं। यथा– एकान्त स्थान नायक–नायिका के भाव को उद्दीप्त करने के कारण उद्दीपन विभाव हैं ।

अनुभाव :–

नायक–नायिका के अन्योन्य दर्शन आदि उद्दीपन विभावों से उद्बुद्ध भाव ही बाह्य क्रियाओं अथवा शारीरिक चेष्टाओं के रूप में अभिव्यक्ति को अनुभाव कहा जाता है।

व्यभिचारी भाव :–

जो रति आदि स्थायी भावों को स०चारित करते हैं अर्थात् दृष्टि तथा अभिव्यक्ति में उनके सहकारी होते हैं, वे चिन्ता, औत्सुक्य आदि भाव काव्य तथा नाट्य में स चारी अथवा व्यभिचारी भाव कहलाते हैं । वे भाव किसी स्थायी भाव में विचित्रता उत्पन्न करके चले जाते हैं । किसी रस के आस्वादन पर्यन्त नियत रूप से नहीं रहते । अतः अनियत होने के कारण भी ये व्यभिचारी भाव कहलाते हैं । इनकी संख्या 33 है। जो इस प्रकार है– 1.निर्वेद 2.ग्लानि 3.शंका 4. असूया 5. मद 6.श्रम 7.आलस्य 8. दैन्य 9. चिन्ता 10.मोह 11.स्मृति 12.धृति 13. क्रीड़ा 14. चपलता 15. हर्ष 16. आवेग 17. जाड्य 18. गर्व 19. विषाद 20. औत्सुक्य 21. निद्रा 22. अपस्मार 23. सुप्त 24.प्रबोध 25. अमर्ष 26. अवहित्थ 27. उग्रता 28. मति 29. व्याधि 30. उन्माद 31. मरण 32. त्रास 33. वितर्क ।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची:

अग्निपुराण	महर्षि वेदव्यास	बलदेव उपाध्यायए चैखम्बा संस्कृत सीरीज आफिसए वाराणसीए प्रथम संस्करणए 1966
अभिज्ञानशाकुन्तलम	कालिदास	पदमश्री डाॅ० कपिलदेव द्विवेदीए आचार्य;प्रणेताद्ध
आर्यासप्तशती	गोवर्धनाचार्य	चैखम्बा विद्याभवनए वाराणसीए 1965
उज्ज्वलनीलमणि	रूपगोस्वामी	महामहोपाध्याय पण्डित दुर्गा प्रसाद शर्मा ;व्याख्याद्धए चैखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठानए वाराणसीए 1985
काव्यमीमांसा	राजशेखर	डाॅ० रमाशंकर त्रिपाठी ;संपा०द्धमोतीलाल बनारसी दासए दिल्लीए 1973
काव्यादर्श	दण्डी	प्रो० योगेश्वरदत्ता शर्मा ;संपा०द्ध नाग पब्लिशर्सए 11एध्यूण्एण्ए जवाहर नगरए दिल्लीए 1999
काव्यानुशासन	हेमचन्द	महामहोपाध्याय पं० शिवदता व काशीनाथ पांडुरंगा परब;संपा०द्ध मेहरचंद लछमनदास पब्लिकेशन्सए नई दिल्लीए

		1986
काव्यालंकार	भामह	प्रो॰ देवेन्द्रनाथ शर्मा ;संपा॰द्धबिहार राष्ट्रभाषा
काव्यालंकार	रुद्रट	श्री रामदेव शुक्ल ;संपा॰द्ध चैखम्बा विद्याभवनए वाराणसी.1
छन्दःसूत्रम	संस्कृत भाष्यकार श्रीमदाखिलानन्द शर्मा कविरत्नम्	गुरूकुल वृंदावन स्नातक. शोध संस्थानान्तर्गत आचार्य धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री प्राच्य.विद्यापीठए 74ए तरूण एन्कलेवए नई दिल्ली ।